वैदिक साम्यवाद

नारायण स्वामी

अर्द्ध शताब्दी का उपहार

वैदिक साम्यवाद

और

अन्य उपयोगी धार्मिक लेखों का अपूर्व संग्रह

श्री पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी
जी महाराज

प्रकाशकः—

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज पुस्तक विक्रेता

लाहौर

प्रथम बार २०००]   १६३८   [मूल्य ।)

मुद्रक—
एस० सी० लखनपाल के अधिकार से रमेश प्रिंटिंग वर्कस मोहनलाल रोड में छपी ।

वेदिक साम्यवाद

तेनो रत्नानि धत्तन त्ररा साप्तानि
सुवन्ते एक मेकं सुशस्तिभिः ॥
सुशस्तिभि सप्तानि एक मेकं त्रिरा सुन्वते तेनो
रत्नानि धत्तन ॥

"स्वयं जो आत्म विद्वान सात प्रकार के कर्मों में से एक एक करके तिगुना फल प्राप्त करते हैं, वह हमारे लिये रत्नों को प्राप्त करते हैं।"

सात प्रकार के कर्म, आश्रम और वर्ण हैं, परन्तु चार आश्रमों और वर्णों का योग आठ है। इस लिए पहिले मैं यही बतलाता हूं कि किस प्रकार इन का योग सात ही होता है। मनुस्मृति में जो दोनों का कर्त्तव्य विधान किया गया है। वह विधान दो भागों में विभक्त है।

(१) परलोक सम्बन्धी कर्त्तव्य।
(२) लोक सम्बन्धी कर्त्तव्य।

इन में से परलोक सम्बन्धी कर्त्तव्य सब वर्णों के एक ही हैं। अर्थात वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना।

वर्णों का भेद केवल जीव के सम्बन्धी कर्त्तव्य में है। अर्थात ब्रह्मन वेद पढ़ा, यज्ञ कर और दान लेकर उपलब्ध करे। क्षत्री प्रजा की रक्षा आदि राज्य सम्बन्धी काम करे। वैश्य खेती व्योपार आदि से और शूद्र शरीरिक परिश्रम करके धन प्राप्त करे अतः यह स्पष्ट है कि वर्ण वृति पर निर्भर है। वृति प्राप्ति अथवा धन उपार्जन करना केवल गृहस्थ आश्रमों के लिए है। दूसरे तीनों आश्रमों के लिये निषेद है। इस वास्ते गृहस्थ आश्रम के चार वर्णों मे बट जाने से यह चार और तीन आश्रम बानप्रस्त और सन्यास मिल कर विशेष सात ही की संख्या उपलब्ध होती है। उपर्युक्त मन्तर मे इसी लिये सात ही प्रकार के कर्मों का उल्लेख आया है।

प्राचीन काल मे जन्म से वर्ण मानने की प्रचलित प्रथा का अभाव था। और वर्ण मे गुण कर्म की इतनी प्रबलता थी कि लकड़ी को भी इस योग्यता अनुसार ब्रह्मन क्षत्री आदि कहा जाता था। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर राजिन्द्र लाल मित्र ने संस्कृत हस्त लिखित ग्रन्थों का संक्षिप्त विवर्ण अनेक जिल्दों में लिख कर History of sanskrit manuscript के नाम से प्रकाशित किया है। उस माला की एक जिल्द में बनस्पति विद्या मे सम्बन्धित एक ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ का नाम वृक्ष आयुर्वेद (Science of plant life) है। यह ग्रन्थ एक विद्वान भोज तारा पति की रचना है। ग्रन्थ कर्ता ने

अपने ग्रन्थ में लकड़ी के अन्दर ब्रह्मन आदि वर्गों के होने की बात दर्शाते हुए बतलाया है कि जहाज़ के बनाने में इस के किस किस भाग में किस वर्ण की लकड़ी का प्रयोग होना चाहिये। लकड़ी का वर्ण भेद इस प्रकार प्रकट किया है।

(1) Bsahman class wood- that is light and soft and canbe easily joined to any of the kind of wood.

(2) Kshatriya class wood -that is light & hard but can not be joined to other classes.

(3) Vaishya class wood --soft & heavy.

(4) Shudra class wood—is characterized by both hardness & heavyness.

अर्थात्—उस लकड़ी को ब्रह्मन कहते थे जो हलकी और मुलायम हो और सुगमता से दूसरी लकड़ियों के साथ जोड़ी जा सके। वैश्य लकड़ी मुलायम परन्तु भारी होती थी। और शूद्र लकड़ी कठोरता और भारी पन के लिए प्रसिद्ध थी। इन दोनों में किसी प्रकार की छोटाई बड़ाई का भाव ही नहीं है। और न उचित रीति से हो सकता है। जिन वस्तुओं में श्रेणी का भेद होता हो उन में दरजों का भेद नहीं होता। दरजों का भेद केवल एक वर्ण (Kind) की वस्तुओं में हुआ करता है। मसलन यह नहीं कह सकते कि मेज़ अच्छी है अथवा घड़ी। क्योंकि उन में श्रेणी का भेद है। हां दस घड़ियों में यह बतलाया जा सकता है कि कौन सी श्रेष्ठ और

कौन सी अल्प श्रेष्ठ है। क्योंकि यह एक ही क्वालिटी (Kind) की वस्तु हैं। इस नियम को लक्ष में रखते हुये जब वर्णों पर दृष्टी डाली जाती है तो उन मे श्रेणी का भेद पाया जाता है। गुण कर्म की दृष्टी से प्रत्येक वर्ण पृथक है। इस लिए उनके दरजों का भेद नहीं हो सकता। और दरजों का भेद न होने से किसी वर्ण को छोटा या बड़ा नहीं कह सकते।

इस लिए वेद में एक जगह कहा गया है:-

अज्येष्टासो अकनिष्ठास राते संभ्रातरो वादृधुः
सोभागाय, युवा पित स्वपा रूद्र गाषां सुदुधा
पृश्निः सुदिना मरुद्भ्य ।

अर्थात् "सब मनुष्य आपस मे भाई भाई की तरह मिल कर सोभाग्य के लिए बृद्धिकरें। इन मे कोई छोटे या बड़े नही है। सर्व शक्ति मान (रूद्र) परमेश्वर इन सब के पिता और अनेक प्रकार के भोगों को देने वाली पृथ्वी सब की माता है।"

अस्तुः वेदिकसाम्यबाद का रूप स्पष्ट होगया। प्रत्येक पुरुष, स्त्री मे भाई बहन का संबन्ध है। वह एक ही पिता (ईश्वर) और माता पृथ्वी की सन्तान हैं। और सब बराबर है। इन मे से प्रत्येक को आरम्भ का जीवन (ब्रह्मचर्य आश्रम) गरीबी (निर्धनता) के साथ व्यतीत करना पड़ता है। केवल दूसरे गृहस्थ आश्रम मे प्रत्येक को धन कमाने का अधिकार है। इसके बाद अन्त के दो (बान प्रस्त और सन्यास) आश्रमों

में प्रत्येक को निर्धनता का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इस प्रकार जब प्रत्येक मनुष्य को आरम्भ और अन्त दोनों कालों में निर्धनता का जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर होना पड़े तो फिर मज़दूरी (Labaur) और पुञ्जी (Capital) का झगड़ा किस प्रकार हो सकता है। इस वैदिक साम्यवाद में हिन्सा प्रतिहिन्सा आदि किसी की भी गुञ्जाइश नहीं।

सफलता की कुञ्जी

संसार में सफलता की कुञ्जी दृढ़ता में है। एक कार्य्य आरम्भ करो, भली भान्ति सोच विचार कर आरम्भ करो। आगा पीछा विचार कर आरम्भ करो। परन्तु जब आरम्भ करो तो फिर समाप्त किए विना इसका पीछा न छोड़ो। इसका नाम दृढ़ता है।

धर्म के दस लक्षणों में प्रथम लक्षण धृति में येही भाव है। सबसे पहिला स्थान उस को दिया ही इसलिए गया है कि इस के बिना दूसरे लक्षण की सफलता सम्भव नहीं। किसी कार्य्य के निश्चय रूप में करने का नाम वेदों की भाषा में व्रति है।

ईश्वर को व्रत पती के नाम से पुकार कर व्रतों को सम्पूर्ण करने का बल प्राप्त हो। इस के लिए जगह जगह पर प्रार्थना करने का बिधान वेदों में किया गया है।

जैसे—

"अग्ने व्रत पते व्रतं चरिण्यामिः"

इत्यादि व्रत ग्रहण करके फिर उसकी पूर्नि होने या पूर्ति के यत्न में मनुष्य अपने को ममाप्त करदे। इस के सिवाय बीच की और कोई बात नहीं हो सकती। इस यत्न का नाम दृढ़ता है संसार का छोटे से छोटा कार्य्य इमके बिना पूरा नहीं हो सकता। मर्यादा पुरशोतम राम अपने यत्न को निरन्तर जारी न रखते तो क्या यह सम्भव था कि रावण जैसे शक्ति शाली सम्राट को पराजित कर सकते। यदि भगवान कृष्ण इसी प्रकार का यत्न न करते तो क्या यह सम्भव था कि जरासिन्ध जैसे महार्थी को जिसके कारण मथरा छोड़ कर इन्हें द्वारिका जाना पड़ा था बध करा सकते ?

वर्त्तमान काल की ओर दृष्टी डालो। अमरीका की सफलता का एक कारण --मुख्य कारण वहाँ के विचारक यह बताते हैं कि अमरीका के लोग असफलता से निराश नहीं होते। बल्कि दुगने उत्साह से इस कार्य्य को पूरा करना चाहते हैं। और जबतक सफलता प्राप्त नहीं कर लेते। इस का पीछा नहीं छोड़ते।

हिमालय की सब से ऊंची चोटी ऐवरस्ट है। संसार में इस से ऊंची किसी पहाड़ की चोटी नहीं। अभी तक उसकी चोटी के ऊपर कोई नहीं पहुंच सका। वर्षों से पश्चिमी विद्वान यह यत्न कर रहे हैं कि चोटी पर पहुँच सकें। परन्तु सफल नहीं हुये। परन्तु क्या वह निराश हो गये ? कदाचित नहीं। प्रति वर्ष इस यत्न में प्राण और धन की हानि उठाते हैं। फिर भी यत्न नहीं छोड़ते। और लगातार इसे जारी रखे हुये हैं। इसी प्रकार प्रति वर्ष कुत्बों की यात्रा की जाती है। सफलता न होने पर

भी यत्न बराबर जारी है। अवश्य एक न एक दिन सफलता प्रप्त हो कर रहेगी।

जीवन को संग्राम कहते हैं। संग्राम से भागने वाला कायर होता है। परन्तु संग्राम से सफलता के साथ निरन्तर यत्न करने वाले पुरुष वीर कहलाते हैं। यह वीरता आर्य्य जाति की सम्पति होती हुई भी मन्द भाग्य से इस समय आर्य्य जाति में दिखाई नहीं देती। यही कारण आर्य्य जाति की गिरावट का है। और जब तक यह बना रहेगा।

"कारण भवात कार्य भावः"

के नियम के अनुसार आर्य्य जाति की पतन अवस्था भी दूर नहीं हो सकती। आर्य्य समाज जिस को ऋषि दयानन्द— आर्य्य समाज के संस्थापक ने आर्य्य जाति को इस की गिरी हुई अवस्था से उठाने के लिये संस्थापत किया था स्वयं इसी रोग में ग्रस्त हो चला है।

ऋषि दयानन्द का जीवन सफलता का जीवन था। उन का जीवन चरित्र पढ़ने से पता चलता है कि इस सफलता की तह में मुख्य तीन साधन थे। और इन साधनों की याद ताज़ा करने और वशेष तौर पर इनकी ओर जन्ता का ध्यान दिलाने के उद्देश्य से ही यह पंक्तियां लिखी गई है वह साधन यह थे।

१—विरोद्ध को प्रसन्नता के साथ सहन करना।

२—असफलता से न डरना।

३—दृढ़ता के साथ अपना पुरुषार्थ जारी रखना।

यह सुनहरी नियम थे जिन्हों ने ऋषि दयानन्द के जीवन में चार चान्द लगा रक्खे थे।

१–विरोद्ध को प्रसन्नता के साथ सहन करना

विरोद्ध के साथ ही ऋषि दयानन्द का जीवन आरम्भ होता है। अभी जब यह दयानन्द नहीं बने थे। और माता पिता के घर में रहते हुये मूलजी ही थे। तभी से उन को पिता का विरोद्ध सहन करना पड़ा। कार्य्य क्षेत्र में आने पर तो मानो विरोद्ध का पहाड़ ही टूट पड़ा। ईंट पत्थरों की बोछाड़, लाठियों और तलवारों के आक्रमण, गाली गलोच विष देना इत्यादि कई क्रूर कर्म थे। जिन के करने में विरोद्धियों ने ज़रा भी संकोच नहीं किया था परन्तु दयानन्द ने कितनी प्रसन्नता के साथ, कितनी वीरता के साथ सहन किया और अपने चित्त पर ज़रा भी मैल नहीं आने दिया। इसका उदाहरण ढूँडे से भी इतिहास में नहीं मिलता। उन्हों ने क्रूर कर्म करने वालों से कितनी फ्राग्व दिली (उदारता) का वर्ताव किया वह भी अपनी मिसाल आप है। **एक विष देने वाले को यह कह कर छोड़ दिया "कि मैं संसार को** बन्दी कराने नहीं बल्कि कैद से छुड़ाने आया हूं" दूसरे विष देने **वाले को स्वयं पास से** रुपया दे कर कहना कि "भाग जाओ वरना पकड़े जाओगे"। यह ऐसी बातें हैं जिन की वर्त्तमान प्रचलित सभ्यता प्रवाह में असली रूप देने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

२–असफलता से न डरना

ऋषि दयानन्द के जीवन में असफलता के कई अवसर आये हैं। परन्तु जब भी आये। उनका कोई भी प्रभाव उनके पुरुषार्थ मय जीवन पर नहीं रहा।

असफलता के कुछ उदाहरण यह हैं। (१) गोबध का बन्द न हो सकना। (२) वेद भाष्य का संस्कृत की परिक्षाओं में सम्मिलित न हो सकना। आदि इन असफलताओं के होने पर भी उन्हों ने गौबध के विरुद्ध अन्दोलन बराबर जारी रखा। वेद भाष्य का कार्य्य भी अन्त तक जारी रहा। वह इस सचाई को खूब समझते थे। इस लिये असफलता का आवश्यक परिणाम पुरुषार्थ में अधिकता होनी चाहिये न कि इस को छोड़ देना।

३—दृढ़ता से पुरुषार्थ जारी रखना

इस साधन के बताने के लिये उन वशेष घटनाओं का बताना अन अवश्यक है। ऋषि दयानन्द का सारा जीवन ही स की जीति जागती मिसाल है। एक क्षण भी हम उन के जीवन में नहीं पाते जिस में उन्हों ने "कुर्वन्ते वह कर्माणि" का पाठ भुलाया हो। ऋषि दयानन्द सच्चे कर्म योगी थे। कर्त्तव्य समझ कर कर्म करना फल की ज़रा भी इच्छा न करना उन के जीवन का आदर्श था।

आर्य बन्धुओ! आओं हम भी इन तीनों साधनों को जीवन का आदर्श बनायें। यह कल्याण का मार्ग है। यही सफलता की कुञ्जी है।

वैदिक भक्तिवाद

भक्ति उत्कृष्ट प्रेम को कहते है। उत्कृष्ट प्रेम वह होता है जिस से प्रियतम के प्रेम में इस प्रकार लीन हो जावे कि उसे अपनी सुध बुध न रहे। वेद भगवान मे उसी अवस्था के लिये एक जगह इस प्रकार संकेत किया गया है "कि हे जीवन मय प्रभु यदि मैं तू हो जाऊं और तू मैं हो जावे" तब प्रेमी तेरी अमरता के जीवन रूप आशीर्वाद को प्राप्त कर लेता है। (ऋगवेद ८—४४—२३) ऋगवेद की इस ऋचा में जहां यह कहा गया है "कि मैं तू हो जाऊं और तू मै हो जावे इसका अर्थ स्पष्ट है कि प्रियतम और प्रेमी के बीच मेरे तेरे पन का भाव नहीं रहना चाहिये। यह मेरे तेरे पन का भाव उसी समय प्रेमी के हृदय से दूर हुआ करता है जब वह अहंकार के जाल से बाहर हो जाया करता है। जब तक अहंकार के माया जाल में प्रेमी रहा करता है। तब तक उसके प्रेम को उत्कृष्ट प्रेम, अथवा अगाध प्रेम नही कह सकते। उसका प्रेम अधूरा है। उसने अभी तक भक्ति का

रूप ग्रहण नहीं किया है। कारण स्पष्ट है कि प्रेमी का ज्ञान अभी केवल इन्द्रिय ज्ञान है। वह ज्ञान केवल पदार्थों को केन्द्र बनाने की योग्यता वाला ज्ञान है। जब प्रेमी इस ज्ञान से ऊपर होता है। तब वह अन्तर्मुखी होकर विशेष ज्ञान प्राप्त करता है। यह विशेष ज्ञान आत्म ज्ञान होता है। प्रेमी इसी ज्ञान (विज्ञान) को जिस में भक्ति की पुट रहा करती है। प्राप्त कर के अहंकार के मयाजाल को तोड़ देता है। और मेरे तेरे पन के भाव से ऊंचा हो जाता है।

अब प्रेमी ने उस अवस्था को प्राप्त कर लिया है जिस में वह समझता है कि अब सब कुछ प्रीतम के समर्पण है। यह आत्म समर्पण वेदिक भक्तिवाद का लक्षण है।

आत्म समर्पण करना प्रियतम के साथ तादात्म्य हो जाता है। इस अवस्था के लिये ऋगवेद की ऊपर संकेतित ऋचा का उल्लेख हुआ है।

यदग्ने स्यां अहं तवं वाद्यास्या अहम
स्युष्टे सत्या ३ हार्शिपः ॥

इसी अवस्था के लिये कबीर जीं ने कहा है।

"जब मैं थी तब हर नहीं जब हर तब मैं नांय।
"प्रेम गली अति सांकरी जामें दो न समायं॥

इसी अवस्था के लिये एक उरदू कवि ने लिखा है।

बेखुदी छा जाये ऐसी दिल से मिट जाये खुदी।
उन से मिलने का तरीका अपने खोजाने में है॥

कुछ एक निराशा वादी

संसार में सदा से आशा और निराशावाद साथ साथ चलते आ रहे हैं। कभी किसी की अधिकता होती है कभी किसी की। आर्य समाज में दोनों विचारों के मनुष्य हैं। परन्तु यह बात निश्चय रूप से और बिना किसी झिझक के कही जा सकती है कि निराशवादी की संख्या उंगलियों पर गिनने योग्य है। इस लिये उन में कुछ अधिक अंदेशा नहीं हो सकता। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि हमारे उपदेशकों में से कुछ निराशा वादी हैं, और वह अपने मन्द भाग्य सुभाव से सदा आर्य समाज पञ्जाब की कुछ पुराने ढांचे की स्त्रियों की भांति मातमी गीत गाया करते हैं। उन के नज़दीक कालिजों में कुछ लाभ नहीं। गुरुकुल फ़जूल खोले गये हैं। आर्य समाज और उसकी संस्थाओं ने कुछ नहीं किया। सिवाय इस महारनी रटने के उनके पास और कुछ नहीं है।

कोई ऐसे लोगों से पूछे कि उन्होंने (महारनी रटने वालों)

ने आर्य समाज में आकर क्या किया। उन्होंने जो आर्यसमाज से हज़ारों रुपये लेकर कभी एक काम में खर्च किया, कभी दूसरे काम में। उस से क्या बना ?

यदि उस से कुछ भी लाभ नहीं हुआ तो कम से कम उन्हें अपनी इस बुद्धिमता को भी तो कभी कभी प्रकट करते रहना चाहिये।

असलियत यह है कि साधारण तौर पर लोग आत्म निरीक्षण न करने के अभ्यासी हुआ करते हैं। परन्तु यह लोग तो इस विषय में उन सबसे बाजी ले गये हुये हैं। यह दूसरों की कमियों (दोषों) को देखा करते हैं। कभी भूल कर भी अपने को नहीं देखते। वरना इस प्रकार की बातें उन के मुंह से न निकला करतीं।

एक बात और भी है जिससे उनकी अवस्था और भी शोचनीय हो जाती है और वह यह है कि फ़र्ज़ करो आर्य समाज का वार्षिक उत्सव है जिस में अधिक से अधिक मनुष्य आया करते हैं जो आर्य समाज के सभासद अथवा सहायक नहीं हुआ करते। यह लोग जो बाहर के होते हैं और उत्सव पर आते हैं उनके उत्सव पर आने का उद्देश्य यह होता है कि आर्य समाज की शिक्षा को जानें। और लाभ उठावें। आर्य समाज के सभासद और अधिकारी तो उत्सव के दिनों में उत्सव के प्रबन्ध में इतने मशगूल होते हैं कि उन में से अधिक को उपदेश सुनने का अवसर ही नहीं मिलता। अब ऐसे उत्सव पर यदि कोई उपदेशक आकर अपना वही मात्मी राग अलापने

लगता है तो उस भले मनुष्य से कोई पूछे कि इन सुनने वालों के लिये इस राग की क्या उपयोग्यता हो सकती है।

यदि इस प्रकार की बातें कहनी हों तो आर्य समाज के अधिकारियों और सभासदों को एकत्र करके उन मे यह बातें कहें कि जिससे वह उन पर कुछ ध्यान दे सकें।

ऐसे उपदेशक आर्य समाज के उत्सवों पर इस प्रकार की बातें सुना कर एक प्रकार से उत्सव करने का तात्पर्य ही खो देते हैं

यह उत्सव इस लिए किये जाते हैं कि उन मे लोग आर्य समाज की उच्च शिक्षा से वाकिफ (भिज्ञ) होकर उसकी ओर राग़व हों। उसके सभासद बनें। आर्य समाज का सिक्का उन पर बैठे। परन्तु उनके सन्मुख जब आर्य समाज का मातम किया जाये तब वह किस प्रकार आर्य समाज की ओर खिंच सकते हैं।

आगे से आर्य समाज के अधिकारियों को यह करना चहिये कि जिस उपदेशक को भी बुलायें। उसकी स्वीकृति आने पर उस के पास व्याख्यान का विषय लिखकर भेज दिया करें। और वह विषय आर्य समाज का कोई सिद्धान्त होना चहिये। ताकि वह उसी विषय पर व्याख्यान दे। और आने पर उस विषय पर उससे व्यख्यान दिलाना चाहिये। जिस से उत्सव करने का कम से कम उद्देश्य नष्ट न हो।

व्याख्याता अपनी बात सब से पहिले सुनता है। निराशा की बात उसके हृदय में भी वह प्रभाव उत्पन्न किया करती है जो सुनने वालों के हृदय में।

इस लिए निराशावादी व्याख्याता दूसरों के सिवाय अपने साथ भी अच्छा वर्ताव नहीं किया करते। यह बात ईश्वर करे उन भले आदमियों की समझ में किसी प्रकार आ जावे। जिस से यह कम से कम अपने नाश का कारण तो न बनें।

निराशा की बात कहने वाला एक और भी बुरा बर्ताव संसार के साथ किया करता है। और वह यह है कि साधारण तौर पर मनुष्य के जीवन का मुख्य कारण संसार में सुखों की संख्या को बढ़ाना है। परन्तु निराशा बादी सब संसार के सुखों को कम करता है। और इमसे वह सदा संसार के लिए बरकत साबित होने के मुसीबत समझे जाने का कारण बनता रहता है।

निराशा बाद पाप है। संसार के लिये संकट है। इस से सभी का अनिष्ट हुआ करता है। और इसी लिये सब को इस से बचना चाहिये।

क्या मृतक पित्रों का श्राद्ध करना चाहिये ?

मैं एक बार गिया गया था। जहाँ बहुत से लोग मृतक पित्रों का श्राद्ध करने जाया करते हैं। फलुगू नदी पर भी गया था। जहाँ पित्रों को जल दिया जाता है। वहाँ जाकर देखा कि दूर दूर से आये हुए पुरुष मृतक पित्रों को जल दे रहे हैं। मेरे साथ के पुरुषों में से एक ने एक अति मनोरंजक बात मुझे सुनाई। उसने कहा :—

"गुरु नानक जी एक बार इस स्थान पर आये थे। और उन्हों ने भी देखा कि बहुत से लोग अपने पित्रों को जल दे रहे है। तो उन्हों ने उस नदी के किनारे जल के अन्दर घुस कर अपने घर की ओर मुंह करके जल फैंकना आरम्भ कर दिया। चूंकि वह महान पुरुष थे। उन की इस बात को देखने के लिये बहुत से मनुष्य वहां एकत्र हो गये। जब उन्हें उस प्रकार जल फैंकते अधिक देर हो गई तो उन मनुष्यों में से एक ने आगे बढ़कर गुरू जी से पूछा कि यह आप क्या कर रहे हैं। उन्हों ने उत्तर दिया कि घर पर एक बाग है। जिस के

वृक्ष छोटे छोटे हैं। मैं उन्हें जल दे रहा हूं ताकि वह सूख न जायें। इस बात को सुन कर वहां जितने मनुष्य एकत्र थे हंस पड़े। और कहने लगे गुरू जी। भला यहां का जल किस प्रकार आप के बाग के वृक्षों को हरा कर सकता है। गुरू जी ने उत्तर दिया कि भले आदमियों। मैं जानता हूँ कि मेरा बाग कहां है। मुझे उस दशा का भी ज्ञान है जिस ओर मेरा बाग है। यह सब जानते हुए कि मेरा जल तो बाग में नहीं पहुंचेगा मैं ऐसा कर रहा हूँ। परन्तु तुम नहीं जानते कि तुम्हारे मृतक पित्र कहां हैं। किस अवस्था में हैं, और किस ओर हैं। इन सब बातों को न जानते हुये भी तुम्हारा जल मृतक पित्रों के पास अवश्य पहुंच जायेगा? महाराज! इस युक्ति को सुन कर सब लोग चुप हो गए। और उन में से अधिक ने मृतक पित्रों को जल देना छोड़ दिया।

गुरू नानक जी की यह बात इस योग्य है कि आज भी इस से लोगों को शिक्षा लेनी चाहिए। एक बात और है। जिस पर प्रत्येक पुरुष को जो मृतक श्राद्ध करता है गम्भीरता के साथ विचार करना चाहिए।

सम्बन्ध पिता पुत्र और भाई बहन इत्यादि का होता है। यह सम्बन्ध किस में है? मनुष्य का शरीर आत्मा और शरीर से मिल कर सम्पूरण हुआ करता है। तो यह सम्बन्ध आत्मा में है अथवा शरीर शरीर में। अथवा आत्मा और शरीर का परस्पर सन्मन्ध है। यदि यह कहो कि सन्मन्ध आत्मा आत्मा में है तो यह असम्भव है क्योंकि पिता को पुत्र से बढ़ा होना

चाहिए। परन्तु आत्मा सब अनादि और अनन्त हैं। और यदि यह कहो कि शरीर शरीर मे। तो यह भी नहीं हो सकता। क्योंकि केवल आत्मा से खाली शरीर को पिता अथवा दादा मानने से उसका दाह करने वाला अपने पिता—दादा का घातक समझा जायेगा। परन्तु मरे हुए मनुष्य के शरीर को जला देना पुन्य समझा जाता है। इसका अवश्यक परिणाम यह है कि यह सन्बन्ध आत्मा और शरीर के परस्पर सन्बन्ध ही में मानना पड़ता है। परन्तु मनुष्य के स्वर्गवास हो जाने पर शरीर और आत्मा के भिन भिन हो जाने से यह सन्बन्ध बाकी नहीं रह सकता। जब इस प्रकार बिचार करने से स्पष्ट तौर पर ज्ञात हो जाता है कि मरने के पश्चात कोई सम्बन्ध शेष नहीं रहा। तो फिर किस को जल दिया जाता है और किस को भोजन।

ब्रह्मचर्य और शिष्टाचार

मनुष्य में मनुष्यता का होना अति आवश्यक है और जिस मनुष्य में आचार की दृढ़ता नहीं वह संसार की दृष्टि में हो अथवा न। वेद की दृष्टि में मनुष्य नहीं।

सब से पहिली वस्तु जो मनुष्य मे होनी चाहिये वह ब्रह्मचर्य है। वेद कहता है कि जिस मनुष्य के अन्दर ब्रह्मचर्य है। उसे किसी वस्तु का भय नहीं रहता। ब्रह्मचर्य का शब्द अति विस्तार है। इस का एक तात्पर्य है कि विद्या अर्थात् ज्ञान को अपने अन्दर जज़ब करना और किसी से भय न खाना।

कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर से डरना चाहिये। परन्तु वेद ऐसी आज्ञा नहीं देते। वेद में ईश्वर को न केवल माता पिता ही कहा गया है बल्कि मित्र भी कहा है। अतः निर्भय होने की अवश्यकता है। और इस के लिये बलवान होना आवश्यक है। बल्कि मैं तो यह कहता हूं कि संसार में निर्बलता से अधिक कोई लानत नहीं हो सकती।

ब्रह्मचर्य से ममुष्य की आयु बढ़ जाती है। ईश्वर ने वर्षों

और दिनों के हिसाब में आयु निश्चित नहीं की थी।

दूसरी वस्तु जो मनुष्य के आचार के लिये अति आवाश्यक है। वह तप है। तप का तात्पर्य यह नहीं कि मनुष्य हाथ खड़ा कर के सुखावे। बल्कि यह कि मनुष्य में कठोरता और दुःख सहन करने की शक्ति उत्पन्न हो। जिस मनुष्य का स्वभाव आराम करने का हो उस के लिये आराम और क्लेश का मुकाबला करना अति कठन हो जाता है। मनुष्य दुःखों के द्वारा से ही सुख प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मचर्य और तप दोनों साथ साथ चलते हैं।

भगवान कृष्ण को यूंही बदनाम किया जाता है, परन्तु हकीकत में वह उच्च कोटि के मनुष्य थे उन्होंने विवाह के पश्चात् भी बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया, और उस के पश्चात् सन्तान उत्पन्न की। परन्तु आज कल जो सन्तान उत्पन्न की जाती है वह खुद रो है। वह किसी उद्देश्य से उत्पन्न नहीं की जाती। इस लिये आवश्यकता है इस बात की कि मनुष्य के आचार का आदर्श बहुत ऊंचा किया जाये।

तीसरी वस्तु जो मनुष्य के आचार के लिये अति आवश्यक है। वह ज्ञान है। जब तक आप लिट्रेचर का अद्धंन न करें। आप को ज्ञान ही क्या हो सकता है। इस के लिये अति अधिकता से महान पुरुषों की जीवनियों के अद्धंन करने की अवश्यकता है।

उदाहरण के तौर पर रामायण को देखिये। उसमें आप को दृष्टि गोचर होगा कि जब सीता जी अप हरण की गई उस समय

राम और लक्ष्मन दोनों थे। यदि वह चाहते तो भाई भरत को संदेश भेज सकते थे, परन्तु उन्हों ने ऐसा न किया। उन्हों ने वहीं किस्कंदा में सेना एकत्र की। हथियार एकत्र किये। और नल नील जैसे योग्य इञ्जीनियर उत्पन्न किये। और लंका को पराजित कर लिया। इस प्रकार महान पुरुषों ने आत्म विश्वास से कार्य किया।

चौथी वस्तु जो मनुष्य के आचार के लिये आवश्यक है। वह आत्म विश्वास है। जो लोग दूसरों के कन्धों पर रख कर बन्दूक चलाते हैं वह संसार में उन्नति नहीं कर सकते हैं केवल वह न्नति कर सकते हैं जो अपने पाओं पर स्वयं खड़े हों।

बुद्धि मनुष्य के लिये सब से बड़ी सम्पति है।

हमारे ऋषि मुनी हम पर भारी रिण छोड़ गये हैं। ऋषियों के रिण से हम किस प्रकार छुटकारा प्राप्त कर सकते हैं। वह साधन यह है कि आप ने जो शिक्षा गुरु से प्राप्त की है उसे कम से कम एक अन्य पुरुष को दें। इस का नाम ऋषि रिण है।

ऋषियों की सम्पति क्या है? वेद शास्त्र और अन्य सत्य शास्त्र- आर्य्य जाति ऋषि रिण की मर्यादा की बदौलत जीवित है। एक ऋषि ने दूसरे को शिक्षा दी। दूसरे ने तीसरे को इसी प्रकार ऋषि रिण चला जाता है। जिस के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है वह ऋषि रिण हो जाता है।

जिस प्रकार यदि आप आतशी शीशा सूर्य के सामने रखें। सूर्य की किरणों आतशी शीशे पर पड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है। उसी प्रकार चन्द्रकान्त से जल प्राप्त कर सकते हैं। चन्द्रकान्त में यह विशेषता थी कि रात को चान्द के सामने

करने से चान्द की किरणें चन्द्रकान्त पर पड़ती थीं और जल उत्पन्न होता था।

रामायण में इसका वर्णन आया है। प्राचीन समय के लोग चन्द्रकान्त के घड़े बना कर रात को चान्द की किरणों के सामने रख देते थे और वह जल से भर जाते थे।

आईन अकबरी में अबुल फज़ल ने कहा है कि यहां के लोगों को चन्द्रकान्त का ज्ञान था, परन्तु वर्त्तमान समय के लोगों को चन्द्रकान्त का ज्ञान क्यों नहीं है? इसका कारण यह है कि चन्द्रकान्त के जन्मदाता ने किसी को नहीं बतलाया था जिसका परिणाम यह निकला कि चन्द्रकान्त का ज्ञान हमको नहीं हुआ। मेरा इस कथन से तात्पर्य यह है कि यदि चन्द्रकान्त की शिक्षा दी जाती तो यह ऋषि रिण बन जाता। ऋषि रिण से ही शिक्षा बढ़ती है। हृदयम शब्द ऋषिरिण की शिक्षा देता है। हृदयम से तीन तात्पर्य निकलते हैं। लेना देना और जानना। हृदयम से आत्मक ज्ञान प्राप्त करो। यह ज्ञान दूसरों को दो, और जिस समय दो तो कर्त्तव्य का ठीक पालन करते रहो तो सुख से इस संसार में पुरुष जीवन व्यतीत करता है।

परमात्मा ने पुरुषों को बुद्धि सब से बड़ी वस्तु दी है। परन्तु यह बुद्धि अच्छी भी बन सकती है और बुरी भी। यदि सत संग मिले, धार्मिक शिक्षायें मिलें तो बुद्धि अच्छी रहती है। बुरे संग और अन्य पुरुषों को दुःख क्लेश पहुंचाने से बुरे बिचार उत्पन्न होते रहते हैं। और बुद्धि बुरी हो जाती है। मसलन, विषीली गैस उत्पन्नकरने से अपनी और दूसरों की बुद्धि

खराब होती है । हमारे देश और अन्य देशों में विज्ञानक चोर उत्पन्न होगये हैं जो विषीली गैसों से पुरुषों की बुद्धि नष्ट कर देते हैं। गायत्री मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि परमात्मा हमारी बुद्धि को भले कामों में लगाये और हमारी बुद्धि अच्छी होजाये। परन्तु मनुष्य की आयु का ह्रास कब होता है। जिससे मनुष्य पापी बनता है और अपनी बुद्धि को निकम्मी कर देता है।

तत्काल दृष्टि परमात्मा ने बुद्धि की बड़ी भारी सम्पति हम को दी है । इस का ठीक प्रयोग करना हमारे अधिकार में है। जिस समय हम इसका ठीक प्रयोग करते हैं। तब हमारी आयु लम्बी हो जाती है। और हमें कुछ न कुछ प्राप्त होता है।

हमारी आयु का एक एक पल अमूल्य है । इंगलैण्ड की मलका अलिज़वथ के चरित्र से शिक्षा प्राप्त करो । जब उसकी मृत्यु का समय आया तो उस ने डाक्ट्रों को कहा कि मुझे जीवित रख लो। एक एक मिन्ट का एक एक लाख पाऊंड मिलेगा, परन्तु उसे एक मिन्ट भी न मिला। नेपोलियन ने अस्टरलिज को पराजित किया । तो उन्हों ने अस्टरलिज़ के लोगों को बतलाया कि तुम्हारे राजा की हार क्यों हुई। उस का कारण यह है कि राजा की सेना पांच मिन्ट देर से आई, और इस पांच मिन्ट की देरी ने इतने बड़े राज्य को नष्ट कर दिया। इस लिये इन सब बातों को सामने रख कर आप को भी एक एक पल शुभ जामों में व्यतीत करना चाहिये।

प्रकृति

प्रकृति जगत के उपादान कारण का नाम है। कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है। इस उदाहरण में कुम्हार निमित कारण, मिट्टी उपादान कारण और घड़ा कार्य्य है। इसी प्रकार जगत की रचना का निमित्त कारण परमेश्वर है, उपादान कारण प्रकृति और जगत उस का कार्य्य है। वेद में ईश्वर और जीव के सिवाय इसी लिये प्रकृति को भी नित्य कहा है।

(१) द्वा सुपर्ण मयुज। सखायास मानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यः बिप्पलं स्वदूत्यनष्वश्नोन्नोभिवाशौति ॥

ऋगवेद १-१६४। २०

अर्थात् प्रकृति रूपी नित्य वृक्ष पर, ईश्वर और जीव रूपी दो पक्षी आश्रित होते हुये रहते हैं। इन में एक (जीव) उस वृक्ष के स्वादु फलों को खाता है, परन्तु दूसरा (ईश्वर) न खाता हुआ साक्षी मात्र हो कर रहता है।

(२) फिर दूसरी जगह ऋग्वेद ही में कहा गया है।

नमृत्यु रासीदमृतं न तर्हि न राज्य अह्न आसीत प्रकेतः
आनीद वातं स्वधयातदेकं तस्यद्धन्यन्नवरः किंचवाम ॥
ऋग्वेद १०-१२६ । २

अर्थात् उस समय (प्रलयावस्था में) न मृत्यु थी, न अमृत न दिन और न रात का ज्ञान था। सृष्टि के प्रथम वह एक ईश्वर (स्वधया) प्रकृति के साथ प्राण धारण कर रहा था। और कुछ नहीं था अर्थात् प्रकृति उस समय भी मौजूद थी। सायणाचार्य्य ने "स्वाधा' का अर्थ माया किया है श्वेताश्वर उपनिषद् में माया नु प्रकृति विधि मायिनंतु महेश्वरा माया को प्रकृति और महेश्वर को इस प्रकृति से काम लेने वाला (मविन) कहा गया है।

वेद की शिक्षा यह है कि सृष्टि और प्रलय का चक्र दिन और रात की तरह नित्य है ईश्वर पूर्व कल्पों की भांति, प्रकृति से जगत की रचना किया करता है। जैसा कि ऋगवेद में "सूर्य चन्द्र मसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत" कहा गया है कि धाता (ईश्वर) ने पूर्व कल्प की तरह सूर्य, चन्द्र आदि को रचा है।

वेद और उपनिषदादि सभी ग्रन्थों में उपर्युक्त सिद्धान्त स्थल स्थल पर पुष्ट किया गया है।

शंकराचार्य और उनका मायावाद

प्रकृति के नित्यत्व का विरोध श्रीमान् शंकराचार्य ने करते हुये प्रकट किया है कि ईश्वर ही जगत् का अभिन्न भितोपादान कारण है, अर्थात् कुम्हार भी वही है और मिट्टी भी वही है। इस वाद की पुष्टि के लिये मुंड को उपनिषद् में दिया हुआ मकड़ी का उदाहरण दिया जाता है।

"यथोर्णनाभिः सृजतेगृह्णतेच" ।

युο १।१।७

अर्थात् जैसे मकड़ी स्वयं अपने भीतर से जाला निकालती है और फिर उसे अपने ही भीतर रख लिया करती है। इसी प्रकार ईश्वर जगत् को अपने ही भीतर से उत्पन्न कर के और फिर उसे (प्रलयवस्था में) ग्रहण कर लिया करता है। परन्तु उदाहरण माया वाद का समर्थक नहीं है। मकड़ी, जीव और शरीर दो वस्तुओं के संघात का नाम है। मरी हुई मकड़ी के अन्दर से जाला नहीं निकलता। मकड़ी के अन्दर जो अभिमानी जीव है। वह अपने अधीनस्थ शरीर से जाला निकालता और पुनः उसे ग्रहण कर लिया करता है।

———

जगत् मिथ्या है

शंकराचार्य्य और इस संप्रदाय के अनेक उत्कृष्ट आचार्य्यों वाचस्पति मिश्र और बिद्यारण्यक स्वामी आदियों ने जगत् को मिथ्या बतलाते हुये प्रकट किया है कि रज्जू में सर्प और सीप में चांदी आदि की सदृश जगत् की प्रत्येक वस्तु केवल नाम रूपात्मक है, इस से अधिक उसकी सत्ता कुछ नहीं है। परन्तु यह उदाहरण और उन से निकला हुआ परिणाम, दोनों ठीक नहीं हैं। उदाहरण में जैसा कहा गया है। कि किसी को रज्जू में सर्प की और किसी को सीप में चांदी के भ्रम होने की संभावना हो सकती है, परन्तु कौन कह सकता है कि सर्प और रस्सी अथवा सीप और चान्दी इनकी वास्तविक सत्ता नहीं हैं। इसलिये जब रज्जू भी सत्य और सांप भी सत्य हो तो जगत् मिथ्या किस प्रकार हो सकता है।

शंकर के इस वाद में एक बड़ी त्रुटि है

संसार की किसी वस्तु को लो, उदाहरण के लिये एक

सेव की कल्पना करो। सेव को देखने और हाथ में लेने से दो बातों का ज्ञान होता है :—

सेव की शकल गोल है और उसका रंग सुर्खी माइल पीला सा है।

(२) हाथ में लेने से यह जाना जाता है कि इस आकार और रूप के भीतर कोई वस्तु है जिसको हाथ में लेने से गुरुत्व का अनुभव होता है। कान्ट ने जहां पहिली बात को बाह्य दृश्य (Appearance) कहा है, वहां दूसरी को वस्तु तत्व-(Thing in it self)। शंकराचार्य्य के माया वाद में सब से बड़ी त्रुटि यही है कि उस में जहां बाह्य दृश्य को नाम रूप कहा है, वहां वस्तु तत्व को बातों में भी उड़ा देने का यत्न किया गया है। संसार में प्रत्यक्ष केवल गुणों का हुआ करता है। गुणी को जिस का नाम वस्तु तत्व है, तीन काल में भी कोई नहीं देख सका इस का तात्पर्य यह है कि गुणी का प्रत्यक्ष नहीं हुआ करता। शंकर ने गुणी के प्रत्यक्ष न होने का अनुचित लाभ उठा कर उसे गतरबूद ही कर देना चाहा है, परन्तु यह यत्न सफल नहीं हो सका। सेव के यद्यपि रूप और आकार ही को देखा जाता है, परन्तु हाथ में लेने से जब हम उस के गुरुत्व को अनुभव करते हैं, जो सेव का सेवत्व है, तो उसके लिए, यद्यपि हम उसे आंख में नहीं देखते हैं, यह कहना अनुचित न होगा कि उसे हमने त्वकेन्द्रिय से अनुभव किया इस लिए वह वजन वाली चीज गायब किस प्रकार की जा सकती है। यदि यह कहो कि यह गुरुत्व नाम रूप ही का है तो यह सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि वह

ये बाह्य लम्बाई, चौड़ाई या गोलाई बिना मुटाई के हुआ करती है, और जिस वस्तु में मुटाई न हो उसका वज़न हो ही नहीं सकता, इस लिए जगत का मिथ्यात्ववाद, भ्रम मात्र मृग तृष्णा से प्यास बुझाने की इच्छा के सदृश्य तथ्य रहित है।

ऊपर की पंक्तियां इस बात के प्रकट करने के लिये पर्याप्त है कि प्रकृति के सत्य पदार्थ होने में, किन्तु परन्तु करने की गुंजाइश नहीं है।

क्या प्रकृति आनादि नहीं है?

ईसाई और मुसलमानी मज़हबों के अनुयायी कहते हैं कि जगत् एक ही बार बना है और बिगड़ जाने के बाद फिर नहीं बनेगा, इस लिये एक बार जगत् बनाने के लिये खुदा ने, अन्य वस्तुओं के सदृश, प्रकृति को भी पैदा कर दिया अर्थात् उसे अभाव से भाव रूप में ले आया, परन्तु यह कथन युक्ति और प्रमाण रहित है, और तर्क के सामने नहीं ठहरता। संसार में अभाव या अभाव से भाव का होना बतलाना प्रचलित विज्ञान के भी विरुद्ध है; जिस ने परीक्षणों के आधार पर प्रकट किया है कि वस्तुओं की केवल सूरत बदला करती है, किसी वस्तु का भी अभाव नहीं हुआ करता। प्रकृति और शक्ति का संरक्षण (Conservation of matter and Conservation of Energy) विज्ञान का अटल सिद्धान्त है। मुसलमानों के एक नवीन संप्रदाय वाले (अहमदी लोग) अब मानने लगे है कि जब से ईश्वर है तभी से जगत् बनता और बिगड़ता चला

आता है, परन्तु हर उत्पत्ति के समय ईश्वर' जगत् और जीव दोनों को, अभाव से भाव रूप कर दिया करता है । इस लिये यह दोनों नित्य नहीं हैं, परन्तु यह सिद्धान्त जहां विज्ञान और तर्क आदि सब के विरूद्ध हैं, वहां स्वयं उन के 'इल्मे कलाम' के भी विरुद्ध है । इस का विवरण नीचे दिया जाता है:—

"अरबी के इल्मे कलाम" में अश्या की हकीकत जानने के लिये उन्हें तीन मूरतों में तकसीम किया गया है:—

(१) **वाजिबउलवजूद**—वह शै जो तीनों काल में रहने वाली हो जैसे खुदा ।

(२) **मुमकिन उलबजूद**—जो न हो और हो जावे । जैसे दुनिया ।

(३) **मुमतना उलबजूद**—जिसका बजूद न हो जैसे अन्का ।

आगे चल कर मुमतना उलबजूद को दो हिस्सों में तकसीम किया गया है—

(१) मुमतना उलबजूद अज़ातहु (२) मुमतना उलबजूद वगैरह । उनमें से मुमतना उलबजूद अजातहु को अदम मुतलिक ठहराया गया है और मुमतना उलबजूद वगैरह को अदम मकीद वाला मकान ।

अब सवाल यह है कि मुमतना उलमजूद वगैरह में कोई चीज़ होनी चाहिये जो उसे अदम मुतलिक होने देती और अदम मकीद वाला मकान ठहराती है । वरना दोनों एक ठहरेंगी ।

और यह इल्म कलाम को मंजूर नहीं हम उसी चीज को माद्दा कहते हैं।

अत: स्पष्ट है कि मुसलमानी मत का, प्रकृति को उत्पन्न और सादी मानना, स्वयं उसके इल्मे कलाम के विरुद्ध है।

क्या ईश्वर प्रकृति का मुहताज है

एक और बात कही जाती है कि यदि प्रकृति को नित्य माना जायेगा तो इस से ईश्वर, प्रकृति का जगत् बनाने के लिए, मुहताज ठहरेगा, प्रन्तु इस आक्षेप का भी कोई मूल्य नहीं है। यदि मेरे पास धन न हो तो मैं उस (धन) का मुहताज हो सकता हूं, प्ररन्तु धन होने पर, मैं उसका किस प्रकार मुहताज हो सकता हूं। यह विचारणीय है। यदि ईश्वर के आधीन उसके अधिकार और पूर्णाधिकार में प्रकृति न होती तब तो वह उसका मुहताज हो सकता था, प्ररन्तु प्रकृति के होने और पूर्णतया उसके अधिकार में होने पर, ईश्वर भी प्रकृति का मुहताज नहीं हो सकता।

बिज्ञान और प्रकृति की सत्ता

भौतिक विज्ञान में जो क्रान्ति पूर्ण परिवर्तन हुए हैं, उन के आधार पर विज्ञान के लिये प्रकृति को, जैसा अब तक समझा जाता रहा है, भविष्य में ऐसा समझना संभव प्रतीत नहीं होता। वर्तमान भौतिक विज्ञान में हुये आविष्यकारों के आधार पर, अब प्रकृति में वेग की दृष्टि में विभिन्नता है, इस लिये अब प्रकृति नहीं बल्कि (Force) प्राकृतिक कार्य प्रणाली की

आधार शिला है। अस्तु: इस प्रकार के अनेक लेख भौतिक विज्ञानिकों ने लिखे हैं और अब वे प्रकृति का स्थान वेग अथवा शक्ति को दे रहे हैं। इसका कारण और एक मात्र कारण यह है कि भौतिक विज्ञान के पास अभी तक सूक्ष्म भूतों के जानने, उनकी नाप तोल करने के साधन नहीं हैं। अभी कल तक वे पंच भूतों में से एक भूत आकाश (ईथर) ही के जानने में असमर्थ थे, केवल उसको कार्य्य-प्रणाली से उसका ज्ञान रखते थे। ईथर में ४० नील तरंगों के उठने से लाल और ८० नील तरंगों के उठने से बैजनी रंग और इन के बीच में उठी हुई तरंगों से शेष रंगों का ज्ञान होता है। यदि ४० नील से कम या ८० नील से अधिक तरंगें उठें तो कुछ भी नहीं देखा जा सकता। परन्तु यह "आकाशीय तरंग प्रथा" (Vibrotory movement in ether) क्या है? और किस प्रकार अपना काम करती है, इसको वैज्ञानिक नहीं जानते थे। फिर ऐसे अधूरे भौतिक विज्ञान से यह आशा करना कि वह सूक्ष्म भूतों, पंच तन्मात्रा, अहंकार और महत्तत्व का ज्ञान प्राप्त कर के उन की नाप--तोल कर ले, क्लिष्ट कल्पना मात्र है। अभी वर्षों लगेंगे जब वैज्ञानिक शायद मस्तिष्क की कार्य्य--प्रणाली समझ सकेंगे, अन्यथा जोज़फ पिकेब के कथनानुसार इस अंधेरी कोठरी (मस्तिष्क) में विज्ञान के टिम टिमाते हुए दीपक, देखने वालों की आंखों में, चकाचौंध पैदा कर के उस कोठरी के रहस्य समझने में और भी उलझन पैदा कर रहे हैं। यदि केवल शक्ति को प्रकृति की उपेक्षा कर के माना जायगा, तो

शक्ति मान तथा शक्ति के आधारत्व के सम्बन्ध में इतने प्रश्न पैदा होंगे जिनका सुलझाना भौतिक विज्ञान के लिये सुगम काम न होगा अस्तु, प्रकृति नित्य है, वह जगत का उपादान कारण है, उसी से यह जगत् बना करता है, उसकी सत्ता स्वीकार किये बिना प्रवाह से नित्य संसार की समस्या पूर्ति नहीं हो सकती।

ऋषि दयानन्द मूर्तिपूजा के विरुद्ध क्यों थे ?

महाभारत मीमान्सा के लेखक एक महाराष्ट्र विद्वान ने लिखा है कि मूर्ति पूजा का सौति के समय तक प्रचार नहीं था। प्रचार क्या इसका निशान तक भी कहीं नहीं मिलता था। बुद्ध की जब मूर्ति बनने लगी तो उनकी संख्या इतनी अधिक हो गई कि प्रत्येक जगह देश के अन्दर और देश के बाहर बुद्ध के मन्दिर और मूर्तियां ही दृष्टि गोचर होने लगीं। बुद्ध की मूर्तियों की अधिकता से बुद्ध शब्द का अरबी फारसी भाषाओं में "बुत" होकर मूर्ति के अर्थों में प्रयोग होने लगा। उसके पश्चात् हिन्दुओं में मूर्ति पूजा आरम्भ हो गई फिर उसको सिद्ध करने के लिये महाभारत आदि प्रसिद्ध पुस्तकों में मूर्ति पूजा के पक्ष में श्लोकों का प्रवेश होने लगा सौति का समय सन ईसवी से तीन सौ वर्ष पहिले से समझा जाता था अतः सब में पहिला कारण यह था कि मूर्ति पूजा नवीन प्रथा थी। इसलिये ऋषि दयानन्द ने इसका विरोद्ध किया।

दूसरा कारण यह था कि मूर्ति पूजा हानि कारक थी। इस लिये इस योग्य न थी कि इसके नवीन होने से चशम पोशी करके इसको जारी रहने दिया जाता।

जब एक गुन्डा सोने अथवा चान्दी के लालच, अथवा मजहबी दीवानापन से किसी मूर्ति को चुरा ले जाता है अथवा तोड़ देता है तो उसकी बुद्धि पर प्रभाव यह होता है कि गुन्डा मूर्ति से अधिक बलवान है उसका आवश्यक परिणाम मूर्ति पूजा करने वालों पर यह होता है कि उनका हृदय निर्बल हो जाता है। उपर्युक्त लिखित गुन्डों और जिस संप्रदाय के वह होते हैं, उन से भय होने लगता है। अतः हिन्दुओं में कमज़ोर दिली और कम हिम्मती (निर्बलता) का एक कारण यह मूर्ति पूजा भी हुई।

यदि मूर्ति पूजा इतनी बुरी वस्तु थी तो इसका अधिक प्रचार क्यों हुआ। इसका उत्तर कूटल्य के अर्थ शास्त्र से मिलता है।

उस समय राज के कोष की आमदनी बढ़ाने के लिये मूर्ति पूजा का धन राजा के कोष में दाखिल कर दिया करते थे। चालाकी से नई मूर्तियां बना कर जगह जगह पर रक्खी जाया करती थीं और उनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध कर दिया जाता था कि वह पृथ्वी फोड़ कर निकल आई हैं। अथवा ऐसी ही किसी असाधारण बात के द्वारा राजा के कोष की आमदनी बढ़ाने के लिये उस समय इनको प्रयोग में लाया करते थे।

(देखो अर्थ शास्त्र की धारा ९०)

इस से स्पष्ट तौर पर प्रकट होता है कि मूर्ति पूजा का प्रचार इस लिये नहीं हुआ कि यह कोई रसम है बल्कि केवल पैसा

कमाने के लिये इसका प्रचार बढ़ाया गया। जब राजा लोग ही इससे धन कमाते थे तो साधारण लोगों के लिये इसका अनुसरण करना क्या कठिन कार्य्य था।

आज भी मूर्ति पूजा इसी काम में आती है। एक उदाहरण में यह बात स्पष्ट तौर पर प्रकट हो जायगी।

मुरादाबाद ज़िलाह में अमरोहा एक छोटा सा ग्राम है। वहां एक मकबरा (समाधि) है। जिसको शेख सिद्ध का मकबरा कहते हैं। बहुत से हिन्दू लोग वहां ज़ियारत (दर्शन) के लिये जाते हैं। और पैसा चढ़ाते हैं। वहां के सय्यद लोग इस चढ़ावे की आमदनी की बदौलत माला माल हैं। अलीगढ़ ज़िलाह के वासी एक ठाकुर ने भी अमरोहा जाकर यह सब कुछ देखा और इसने घर आकर अपने एक बाग में एक मकबरा बना कर चालाक आदमियों द्वारा जो प्रायः मुसलमान और उस मकबरा के मजावर थे, इसके गर्दो नवाह में यह प्रसिद्ध कर दिया कि शेख सिद्ध अमरोहा से असन्तुष्ट होकर यहां आ गये हैं। परिणाम यह निकला कि उस मकबरा पर भी ज़ियारत (दर्शन) के लिये लोग आने आरम्भ हो गये और उस ठाकुर को अच्छी खासी आमदनी होने लगी।

एक कानून बना दिया जावे कि लोग प्रसन्नता के साथ मूर्ति पूजा किया करें। कबर प्रस्ती करें परन्तु पैसा अथवा किसी प्रकार की भेंट न चढ़ाया करें तो फिर देखो कितनी शीघ्रता से देश से मूर्ति पूजा अथवा कबर प्रस्ती की समाप्ति होती है।

तृत्व (त्रैत) वाद

आर्य्य जाति में प्राचीन (वेदिक) काल से वेद की शिक्षा-नुसार, ईश्वर, जीव, और प्रकृति नित्य मानने का सिद्धान्त माना जाता चला आ रहा है। आर्य्य समाज इसी तृत्व बाद का अब भी प्रचार करता है। यह सिद्धान्त एक समय बड़ा व्यापक और आकर्षक था। इस सम्बन्ध मे कुछेक महत्व की बातों का उल्लेख किया जाता है:—

१—असीरिया के प्राचीन निवासियों ने इस सिद्धान्त को अपनाया था और वह इस तृत्ववाद को मानते थे। उनके तृत्व का रूप यह था।

(१) मानवी मस्तिष्क को बुद्धि प्रदर्शन के लिये चित्त के स्थान को मानते थे।

(२) बैल का शरीर, बल प्रदर्शनार्थ, सत के स्थान पर मानते थे।

(३) गुरुड़ पक्षी, सर्व व्यापकत्व के लिये, आनन्द की जगह मानते थे।

तीनों के मिलाने से वह आर्य्यों का प्रसिद्ध तृत्ववाद सूचक ईश्वर की सत्ता और स्वरूप का द्योतक "सच्चिदानन्द" शब्द बन जाता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त असीरिया में ईसा के ७०० बी· सी में, पूर्ण विश्वास पुरुषत्व के प्रदर्शक, यह तीन बातें मानी जाती थी।

(१) बैल के चिन्ह रूप, पशुत्व का होना=सत

(२) बुद्धि की व्यक्त सत्ता=चित्त।

(३) आत्मा=आनन्द

इसके सवा ईश्वर में वे तीन रूपों का समाविष्ट होना मानते थे। ईश्वर को मिस्र वाले आर्य्य हारूस (**Harus**) कहते थे।

(१) ईश्वरत्व महत्ताद्योतनार्थ=सत।

(२) रा (Ra) जीवत्व=चेतना प्रदर्शनार्थ—चित्त।

(३) इसकारा व्यूस (Tho Scara Beaus) आनन्द प्रदर्शनार्थ=आनन्द।

३—उस समय का पश्चिमी दर्शन शास्त्र भी तृत्ववाद ही माना करता था। पलेटोनिस्ट (Platonist) का एक स्कूल, इलकजैंडियाँ था जो ईश्वर में (देखो Cudwonth's intellactual system) तीन बातों का होना आवश्यक मानता था:—

(१) महान ईश्वरत्व (The supreme God)

(२) मस्तिष्क या बुद्धि।

(३) आत्मा

इस प्रकार युरोप और उस के आस पास, वेदिकतृत्व वाद का कुछ शुद्ध और विकृत रूप आम तौर से माना जाता था और इन का मानना उस समय का फैशन बना हुआ था।

ईसाई मत में उस समय तृत्ववाद (तसलीम या Trinity) नहीं माना जाता था। बाइबल के पढ़ने वाले जानते हैं कि Trinity या इस के समान अर्थ वाला कोई शब्द, उस में नहीं आया है। ईसा की दूसरी शताब्दी के अन्त से पहिले तक— इस तृत्ववाद को ईसाई नहीं जानते थे। उस समय के ईसाई पादरियों ने अपने भीतर इस कमी के होने को अनुभव किया। इस लिये मन् ३२५ ईस्वी में नाइस की कौन्सिल (The Council of nice) ने ईसा में ईश्वरत्व के होने का विधान किया और ईसा को "God of god, very god of very god" पुकारे जाने का निश्चय किया। उस के बाद सन् ३८१ A. D. में हुई कुस्तन्तुनिया की कौन्सिल (The Council of constanti nople) ने ईश्वर को भी तीन व्यक्तत्यत्व (The Person in one god) के लेने का निश्चय किया। और तत्कालीन राजा थियोडा सियस (Theodasius) ने घोषणा की कि जो कोई इस तृत्ववाद को उपर्युक्त भान्ति न मानेगा, उसे दण्ड मिलेगा तब से यह तृत्ववाद ईसा मतावलम्बी मानने लगे हैं:—

अभी हाल की बात है कि कैम्ब्रज विश्व विद्यालय के गिरजे में सरमन होते हुये विशप डैन—राशडैल ने ईसाइयों में प्रचलित तृत्ववाद की निरर्थकता प्रकट करते हुये कहा था कि:—

The Father is Power—सत

The son is wisdom—चित्त

The Holy spirit islove—आनन्द

स्पष्ट है कि (वशेष महोदय) वेद प्रति पादित तृत्ववाद ही को महत्व पूर्ण समझते हैं।

क्या महाभारत इतिहास नहीं है ?

महाभारत में अनेक स्थलों में अस्वभाविक बातें देख कर अनेक पश्चिमी विद्वान, विशेष कर अंग्रेज़ी विद्वान, कह दिया करते हैं कि महाभारत की गणना इतिहास की कोटि में नहीं की जा सकती। परन्तु अन्य देशों की इसी प्रकार की अस्वाभाविक घटनाओं से मिश्रित किताबों (पुस्तकों) को, उन्हें इतिहास कहने में संकोच नहीं होता। उदाहरण के लिये रोम के इतिहासवेता लीवी (Livy) आदि ग्रीक के इतिहास हेरो डोटस (Herodotus) आदि तथा मुसलमान इतिहास लेखक फरीश्ता आदि के लिखे ग्रंथों को देखें, जो इतिहास के नाम से प्रसिद्ध है तो उनमें सैकड़ों अस्वाभाविक और अनैतिहासिक बातों का समावेश मिलेगा। जब यह सभी ग्रन्थ इतिहास कहे और माने जा सकते हैं तब समझ में नहीं आता कि महाभारत को क्यों इतिहास न माना जावे। अवश्य रोम के इतिहास लेखकों में आज कल के इतिहासज्ञ लीवी की जगह गिब्बन (Gibban)

फ्रूड (Froude) का मान करते हैं। परन्तु यह नहीं समझते कि गिब्बन आदि ने जो इतिहास लिखे हैं, उनका आधार तो वही लीवी आदि के लिखे हुये इतिहास हैं।

इंगलैंड आदि देशों में पद्य में केवल वीर पुरुषों के वार्ताद्योतक (E Pic) काव्य लिखे जाया करते हैं, आख्यान ग्रंथ नहीं लिखे जाते। इस लिए महाभारत को पद्य में देख कर उन्हों ने इसे भी काव्य ही कहना शुरू कर दिया, परन्तु इन लोगों ने यह नहीं समझा कि हमारे देश में तो कानून आदि सभी प्रकार के ग्रंथ पद्य ही में लिखे गए हैं जैसे मनुस्मृति आदि अनेक स्मृतियां। इन्हें कौन काव्य कह सकता है। यह कानून के ग्रंथ हैं।

वेबरने एक जगह लिखा है:—Since megas thenes say nothing of the epic (महाभारत) ,it is not improbablely Pothesis, that its origin is to be placed in the interval Betwen his time and that "Chuysoston "for what ignorant Sailors took not of would hardiy have escaped his obser-sat ion (History of Sanskrit literature by weber, English translation. P. 196-1882.

परन्तु वेवर ने इस बात पर बिचार नहीं किया कि मेगेस्थनीज के ग्रंथ तो अब अप्राप्त हैं। उनके ग्रंथों के उद्धारण अनेक ग्रंथों से लेकर डाक्टर श्वान बेक (Dr. Schwan Bek) ने संग्रह किया है। इस संग्रह के आधार पर, कोई भी समझदार पुरुष यह नहीं कह सकता कि मेगेस्थनीज ने क्या नहीं लिखा।

इन सब बातों पर विचार करने के बाद जो परिणाम उचित रीति से निकाला जा सकता है, वह यह है कि महाभारत के इतिहास कहने के विरुद्ध जो पश्चिमी विद्वानों की दलीलें हैं वह थोथी और रद करने के योग्य हैं और महा भारत ठीक उसी तरह से इतिहास है जैसे लीवी और फरिश्ता आदि के इतिहास।

अवश्य जो अस्वाभाविक बातें हैं उन पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

कुछ अन्य उपयोगी पुस्तकें